रवींद्रनाथ ठाकुर को याद करने का मतलब



प्रफुल्ल कोलख्यान

रवींद्रनाथ ठाकुर का जन्म 1861 में हुआ था। उस समय तक भारत का शासन इस्ट इंडिया कंपनी के हाथ से निकलकर ब्रिटिश संसद के हाथ में आ गया था। 'कंपनी' और 'संसद' के चरित्र का अंतर उनके शासन-व्यवहार के अंतर अंतर को दर्शाता है। 'कंपनी के शासन' का अंत करनेवाले भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का एक सौ पचास वर्ष पूरा हो चुका है। 1857 के कारण और प्रभाव को नये-नये तथ्यों के आलोक में समझने का प्रयास किया जा रहा है। आज उदारीकरण-निजीकरण-भूमंडलीकरण के दौर में राष्ट्र प्रत्याहार सन्निपात से ग्रस्त है और कारपोरेट घराने नागरिक मामलों का उत्तरदायित्व लेने को मचल रहे हैं। भारत का ऐतिहासिक अनुभव काम आ सकता है। संसदीय शासन के अंतर्गत आ जाने के कारण भारत में भी राजनीति की संसदीय प्रक्रिया का आरंभ हुआ और जनमत के लिए जगह बननी शुरू हुई। इस दौर के भारतीय समाज के प्रबुद्ध और प्रभावी लोगों में ब्रिटिश शासन और संस्कृति को लेकर स्वीकार-अस्वीकार का द्वंद्व तीव्र था। इस दौर में अधिकतर लोगों की दृष्टि बिटिश शासन की औपनिवेशिक-संस्कृति पर ही अटक जाती थी। कुछ लोगों की दृष्टि शासन के पार ब्रिटेन की जन-संस्कृति तक पहुँचती थी। शासन के आर और पार जानेवाली इन दृष्टियों के कोण में भी अंतर था। इसलिए अट्ठारह सौ सत्तावन के प्रति समाज के प्रबुद्ध और प्रभावी लोगों के रवैये का कोई एक ही स्तर नहीं था। अट्ठारह सौ सत्तावन के बाद भारत

की राजनीतिक प्रक्रिया में गुणात्मक परिवर्तन हुआ। कंपनी शासन के दौरान आरंभ हुए नवजागरण के एजेंडे के अंतर्गत सामाजिक सुधार की प्रक्रिया की त्वरा में भी गुणात्मक परिवर्तन हुआ। नये-पुराने मूल्यों के संघर्ष में राजनीतिक तत्त्वों का सन्निवेश हुआ और समाज सुधार की प्रक्रिया में नई अर्थवत्ता के लिए जगह बननी शुरू हुई। नये-पुराने मूल्यों के इस संघर्ष में भक्तियुगीन मूल्यों की शिथिलता आधुनिकता के आघात से नई सक्रियता में बदल गई। नये-पुराने मूल्यों के ऐसे ही संघर्ष के दौर में रवींद्रनाथ ठाकुर का आविर्भाव हुआ। रवींद्रनाथ के प्रसिद्ध उपन्यास 'गोरा' में इस संघर्ष का सृजन पक्ष अपने उभार के साथ उपलब्ध है।

1857 के सारांश को समझें तो इसके पीछे के आर्थिक कारणों को साफ-साफ पढ़ा जा सकता है। शासक समझ रहे थे कि आर्थिक अधिकारों की चेतना और धर्म-संप्रदाय निरपेक्ष सांस्कृतिक भावना का समावेश उभरते हुए भारतीय राष्ट्रवाद को आंतरिक रूप से इतना शक्तिशाली बना देगा कि इसे उपनिवेश बनाये रखना असंभव हो जायेगा। ऊपर से देखने पर यह प्रतीत होता है कि राजनीतिक कार्रवाई के रूप में अट्ठारह सौ सत्तावन का संघर्ष बिखरकर शिथिल हो गया लेकिन गहराई में जाकर देखने पर यह साफ होता है कि सांस्कृतिक स्तर पर सामाजिक कार्रवाई में अपेक्षाकृत अधिक प्रौढ़ता और परिपक्वता आई। भारत दुर्दशा भारतीय साहित्य केंद्र में आ गया। 1867 के आस-पास रवींद्रनाथ ठाकुर के परिवार के समर्थन से नवगोपाल मित्र द्वारा आयोजित 'हिंदू मेला' के लिए लिखे गये साहित्य में भारत दुर्दशा का चित्र मिलता है। नील की खेती करनेवालों की दशा का चित्रण दीनबंधु मित्र के नाटक नीलदर्पण (1860) में मिलता है। 'नील देवी' और 'अंधेर नगरी' के अतिरिक्त भारतेंदु हरिश्चंद्र का एक नाटक 'भारत दुर्दशा' नाम से ही आया। नाटकों के बढ़ते हुए प्रभाव और दबाव के कारण लिटन को 1876 में ड्रामेटिक परफार्मेंसेज एक्ट लाना पड़ा। कहना न होगा कि उस दौर में सांस्कृतिक स्तर पर हुए राजनीतिक प्रहार के प्रभाव को पूरी तरह पढ़ना अभी बाकी है।

आर्थिक अधिकार की समझ अधिक ठोस होती है और उस पर पड़नेवाली चोट से भीषण कोलाहल पैदा होता है। धर्म-संप्रदाय निरपेक्ष सांस्कृतिक भावना को तोड़ना अधिक आसान होता है। ब्रिटिश शासकों ने इस आसान रास्ता को अपनाया। नवजागरण के एजेंडे के समाज सुधार आंदोलन के समांतर पुनरुत्थानवाद की धारा भी चल रही थी। ब्रह्मसमाज, प्रार्थनासमाज, तरुण बंगाल, विद्यासागर के आंदोलन स्वभावत: और अंतत: एक हिंदू निर्मिति थी। शासकों का शह पाकर हिंदू और मुस्लिम अस्मिता अपने सह-अस्तित्व की बनती एवं बलवती होती हुई संभावनाओं को नकारकर हुई द्विराष्ट्रीयता की ओर बढ़ने लगी। इसकी झलक बंकिमचंद्र के उपन्यास ‘आनंदमठ’ में है। इसी पृष्ठभूमि में रवींद्रनाथ ठाकुर का साहित्य में आविर्भाव हुआ। पचास से अधिक कहानी संग्रहों, बारह उपन्यासों, तीस से अधिक नाटकों, दो सौ से ज्यादा निबंधों, दो हजार से अधिक कविताओं, चित्रांकनों सहित विभिन्न कला माध्यमों से विभिन्न अवसरों पर व्यक्त किये गये उनके विचार प्रेरणादायक हैं। बुद्ध विचार की विलक्षणताओं और भक्ति आंदोलन की मानव चेतना के साथ ही रवींद्रनाथ ठाकुर के दृष्टिकोण के निर्माण में बंकिमचंद्र की इतिहास-संस्कृति दृष्टि, ब्रह्मसमाज की समाज-दृष्टि, राष्ट्रीय आंदोलन की भविष्य-दृष्टि का भी योगदान था। रवींद्रनाथ ने इन्हें आत्मसात किया और फिर आवश्यकतानुसार इनका आत्मातिक्रमण भी किया। आत्मसात कर आत्मातिक्रमण महान प्रतिभाओं की पद्धति है। रवींद्रनाथ ने शास्त्र की परंपरा को नहीं, लोक की परंपरा को आगे बढ़ाया। उनकी समस्त चिंताओं के केंद्र में मनुष्य था। मनुष्य पर विश्वास खोना उनके लिए सब से बड़ा पाप था; मानवता से असंबद्ध सत्य उनके लिए निरर्थक था। उनका मानव धर्म बाउल एवं निर्गुनियों के जीवनानुभव से संपोषित है। महत्त्वपूर्ण प्रतिभाएँ परंपरा को पखार कर उसे नये ओज से भर देती हैं। ‘मानव धर्म’ में उन्होंने प्रेरक और पोषक परंपरा के रूप में रामानंद के साथ ही रज्जब जी, कबीर, नाभा, रविदास आदि की न सिर्फ चर्चा की बल्कि उनकी सामजिक-सांस्कृतिक विष्णुप्रभता और प्रासंगिकता को आधुनिकता के प्राणवायु से जोड़ दिया। अकारण नहीं है कि ‘मानव धर्म’ का ईश्वर ‘मानव’ है और धर्म ‘प्रेम’ है।

विश्व संस्कृति की एकत्व चेतना, भक्ति साहित्य की सामाजिक चेतना और आधुनिक समय की राजनीतिक चेतना के समन्वित तत्त्व से रवींद्रनाथ ठाकुर के अद्‍भुत व्यक्तित्व का गठन हुआ। रवींद्रनाथ के साहित्य में पूर्व-पश्चिम, प्राचीन-आधुनिक, धर्म-विज्ञान, घर-बाहर जैसे विरोधी समझे जानेवाले युग्मों के बीच अद्‍भुत सामंजस्य और संतुलन है। आधुनिक भारतीय राष्ट्र के मिजाज को रवींद्र-साहित्य से समझा जा सकता है। जवाहरलाल नेहरू ने 'भारत की खोज' में रवींद्रनाथ के बारे में कहा--- 'अन्य किसी भी भारतीय से अधिक उन्होंने पूर्व और पश्चिम के आदर्शों में सामंजस्य स्थापित करने में सहायता की है और भारतीय रष्ट्रीयता के आधार को व्यापक बनाया है। वह भारत के श्रेष्ठतम अंतर्राष्ट्रीयतावादी रहे हैं, जिन्होंने अंतर्राष्ट्रीय सहयोग में न केवल विश्वास किया है, बरन उसे बढ़ाने का प्रयत्न किया है, भारत के संदेश को दूसरे देशों में पहुँचाया है और इन देशों के संदेश को हमारी जनता तक लाया है।' रवींद्रनाथ ठाकुर को याद करने का मतलब राष्ट्र, धर्म, जाति, आस्था, रंग, नस्ल, लिंग की घेरेबंदी के बाहर निर्विशिष्ट मनुष्य की संश्लिष्ट विरासत की आधुनिक निर्मिति को याद करना है। रवींद्र साहित्य मानव संस्कृति की सामासिक एकता को समझने और आदर देने की दृष्टि से मूल्यवान प्रेरणा-स्रोत है।